UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180369

UNIVERSAL
LIBRARY

सुमना

ठाकुर गोपालशरणसिंह

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४१

विज्ञप्ति

'मुमना' मेरे गीतों का एक छोटा-सा संग्रह है। यह पुस्तक गत वर्ष वसन्त-ऋतु में लिखी गई थी और उसी समय छपने के लिए प्रेस भेज दी गई थी। परन्तु कुछ कारणों से यह अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी।

यदि ये गीत पाठकों को रुचिकर हुए तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

नईगढ़ी,
रीवाँ
९-४-१९४१

—गोपालशरणसिंह

विषय-सूची

विषय				पृष्ठ
१	सुमनों का संसार !	...	...	१
२	मैंने पाया यह जग सुन्दर !	...	...	३
३	जीवन में जीवन है जीवन !	...	...	५
४	मेरे जीवन की इच्छायें !	...	...	८
५	सुखमय जीवन, दुखमय जीवन !	...	...	१०
६	यह खारा आँखों का पानी !	...	...	१२
७	क्या भेद छिपा है जीवन का ?	...	...	१४
८	मेरे उर की कोमल कलियाँ !	...	...	१६
९	है यह जीवन का उपहास !	...	...	१८
१०	यह कोमल लघु फूल !	...	...	२०
११	तुम सुखी रहो मैं दुखी रहूँ !	...	...	२२
१२	मेरे प्रिय को प्रिय है आली !	...	...	२४
१३	मुझको कुछ भी हुआ न ज्ञान !	...	...	२६
१४	तुम कोमलता के आकर हो !	...	...	२८
१५	क्यों कहते हो मुझे अकिञ्चन ?	...	...	३०
१६	प्रिय है मुझको निज अपनापन !	...	...	३२
१७	देख रहे हैं किसको तारे ?	...	...	३४
१८	खिल आई है तू शेफाली !	...	...	३६
१९	क्यों इतना उन्मन है तू मन !	...	...	३८
२०	मुझे अकेला ही रहने दो !	...	...	४०
२१	तुझको वृथा अभिमान है !	...	...	४२
२२	है विचित्र वह देश !	...	...	४४
२३	मैं न किसी का हूँ विद्रोही !	...	...	४६
२४	मधु में खिले तो क्या खिले ?	...	...	४८
२५	क्यों मैं भला करूँ अभिमान ?	...	...	५०

विषय				पृष्ठ
२६	कुछ भी मेरा दोष नहीं !	...	...	५२
२७	ऐ मधुवन के फूल !	...	..	५४
२८	क्यों तू मानव ! रोता है ?	...	...	५६
२९	शान्ति रहे पर क्रान्ति रहे !	...	...	५८
३०	कैसे जीवन सफल करूँ !	...	...	६०
३१	खिलो सुमन ! आया मधुमास !	...	...	६२
३२	कुछ तो कोकिल ! कहो कहो !	...	...	६४
३३	मेरे जीवन का उद्यान !	...	...	६६
३४	गर्व वृथा तुम करते हो !	...	...	६८
३५	तुम घृणा करो मैं प्यार करूँ !	...	...	७०
३६	सुख की घड़ियाँ, दुख की घड़ियाँ !		...	७२
३७	मैं हूँ फूल विश्व-छवि-मूल !	...	...	७४
३८	क्यों न भला मैं प्यार करूँ ?	...	...	७६
३९	सजनी ! यह है रजनी-बाला !	...	...	७८
४०	मेरी मदिरा की प्याली !	...	...	८०
४१	हो तुम सुन्दर हरश्रृङ्गार !	...	...	८२
४२	मेरे जीवन की सीमायें !	...	...	८४
४३	है वह जीवन ही बस जीवन !	...	...	८६
४४	मैंने पाया यह वरदान !	...	...	८८
४५	कहाँ गई वह मृदु मुसकान ?	...	...	९०
४६	तू मुझमें है लीन निरन्तर !	...	...	९२
४७	मेरे जीवन की मधुर साध !	...	...	९४
४८	मैंने सीखा दुखमय गायन !	...	...	९६
४९	फूल बनूँ मैं फूल बनूँ !	...	...	९८
५०	मैं तुम्हें पाऊँ कहाँ ?	...	...	१००
५१	जीता हूँ आशा-बल से !	...	...	१०२
५२	रह गया हूँ मैं अकेला !	...	...	१०४
५३	कोयल बोल उठी मन में !	...	...	१०६

१

सुमनों का संसार !

कोमलता के कर से विरचित,
रवि-शशि की किरणों से रञ्जित,
पल में विकसित, पल में विदलित,

जीता है पी-पीकर सुख से

सुन्दरता का सार
सुमनों का संसार !

निज जीवन के रस से सिञ्चित,
अपने रूप-रंग में सीमित,
मधु-प्रेमी मधुपों से गुञ्जित,

वहन न कर पाता है अपने
मृदु सौरभ का भार
सुमनों का संसार !

मधुऋतु का मञ्जुल क्रीड़ास्थल,
मन्द-मन्द मारुत से चञ्चल,
वनस्थली का मधुमय अञ्चल,

करता है स्वागत सुख-दुख का
खोल हृदय के द्वार
सुमनों का संसार !

२

मैंने पाया यह जग सुन्दर !

शूलों का करके आलिङ्गन,
झंझानिल का कर मद-गञ्जन,
नभ के दृग-जल में कर मज्जन,

खिलकर, हँसकर, झुककर, गिरकर,
मैंने पाया यह जग सुन्दर !

देकर अपनी मधु-निधि सञ्चित,
होकर सुख-सुषमा से वञ्चित,
करके अपना जीवन अर्पित,

होकर निपतित प्रिय के पथ पर,
मैंने पाया यह जग सुन्दर !

मैं फूल विपिन-छवि-मूल रहा,
पर भाग्य सदा प्रतिकूल रहा,
मैं खाता हरदम धूल रहा,

रहकर कोमल भीतर-बाहर,
मैंने पाया यह जग सुन्दर !

३

जीवन में जीवन है जीवन !

जीवन का क्षण-क्षण है जीवन,
जगती का कण-कण है जीवन,
आदर्शों का रण है जीवन,

मानव का मानवता है धन;
जीवन में जीवन है जीवन !

तारों में प्रकाश है जीवन,
वसुधा में विकास है जीवन,
जीने का प्रयास है जीवन,

अपनेपन का है अपनापन;
जीवन में जीवन है जीवन !

सुख है जीवन, दुख है जीवन,
पद-पद पर सम्मुख है जीवन,
भव का विभव प्रमुख है जीवन,

जीवन का जीवन है बन्धन;
जीवन में जीवन है जीवन !

स्वेद-कणों से सिञ्चित जीवन,
नयन-नीर से विकसित जीवन,
प्रेम-पुष्प से सुरभित जीवन,

हृदय-राग से है रञ्जित मन;
जीवन में जीवन है जीवन !

सागर में चञ्चल है जीवन,
कलियों में कोमल है जीवन,
जग में कोलाहल है जीवन,

विश्व-प्रेम का है विज्ञापन;
जीवन में जीवन है जीवन !

जीवन है प्रिय का आराधन,
उन्नति-अवनति का है साधन,
है अनादि जग का परिवर्तन,

मनन और चिन्तन है जीवन;
जीवन में जीवन है जीवन!

४

मेरे जीवन की इच्छायें !

छिपी रहें विकसित होकर भी,
रहें सदा कोमल भीतर भी,
करें न कभी तनिक मर्मर भी,

बनकर पंखडियाँ सुमनों की,

जग में मृदु सौरभ फैलायें
मेरे जीवन की इच्छायें !

उठें गिरें पर डरें न मन में,
भवन छोड़ मिल जायँ भुवन में,
रहें न सीमित अपनेपन में,

बनकर प्रेम-सिन्धु की लहरें,

जग के जीवन में लहरायें
मेरे जीवन की इच्छायें !

निकलें पिघल-पिघल उर-तल से,
भर जायें निज लोचन-जल से,
डरें न जग की उथल-पुथल से,

कर दें प्लावित इस वसुधा को,

बनकर करुणा की सरितायें
मेरे जीवन की इच्छायें !

५

सुखमय जीवन, दुखमय जीवन!

दोनों से है मन को ममता,
दोनों में है कुछ-कुछ समता,
दोनों में है कुछ निर्ममता,

दोनों में है कुछ अपनापन,
सुखमय जीवन, दुखमय जीवन!

दोनों में है अनुरक्ति छिपी,
दोनों में है भव-भक्ति छिपी,
दोनों में है ध्रुव-शक्ति छिपी,

दोनों में है जग-हित-साधन,
सुखमय जीवन, दुखमय जीवन!

दोनों में है विश्वास अटल,
दोनों में है अभिलाष अचल,
दोनों में है उल्लास सरल,

दोनों में है कुछ पागलपन,
सुखमय जीवन, दुखमय जीवन!

दोनों में है स्वप्नों का घर,
दोनों में है साहित्य अमर,
दोनों में है मानव सुन्दर,

दोनों में है प्रेमी का मन,
सुखमय जीवन, दुखमय जीवन!

दोनों का है संसार अलग,
दोनों का अपना प्यार अलग,
दोनों का है व्यवहार अलग,

दोनों में है गायन-रोदन,
सुखमय जीवन, दुखमय जीवन!

६

यह खारा आँखों का पानी !

पुष्पों के उर का आभूषण,
शरद्-शर्वरी का शोभा-कण,
प्रात-भूमि-लुंठित तारागण,

युग-युग की है एक निशानी;
यह खारा आँखों का पानी !

मञ्जुल मुक्ता-मणि-सा उज्ज्वल,
तरु-पातों से ढल-ढल प्रतिपल,
भरता है वसुधा का अञ्चल,

है जीवन की करुण कहानी;
यह खारा आँखों का पानी !

ढुलक-ढुलक नयनों से अविरल,
करता है कठोर को कोमल,
सन्तापित प्राणों को शीतल,

प्रेम-पयोधि, दया का दानी;
यह खारा आँखों का पानी !

जग की दुख-पीड़ा का आकर,
है लहराता उर का सागर,
भरता है जीवन की गागर,

मन की मर्म व्यथा का ज्ञानी;
यह खारा आँखों का पानी !

७

क्या भेद छिपा है जीवन का ?

सुमन सदा हँसते रहते हैं,
अपनी व्यथा नहीं कहते हैं,

समाचार मिल ही जाता है
तो भी जग को कानन का;
क्या भेद छिपा है जीवन का ?

घिरा गगन है वारिद-दल से,
शीतल होता है दृग-जल से,

चपल चञ्चला कर देती है

प्रकट भाव नभ के मन का;
क्या भेद छिपा है जीवन का ?

गिरिवर नहीं कहीं जाता है,
अपनी बात न बतलाता है,

निर्झरिणी परिचय देती है

उसके दुखमय गायन का;
क्या भेद छिपा है जीवन का ?

८

मेरे उर की कोमल कलियाँ !

वन-वन में, उपवन-उपवन में,
सुन्दर विकसित सुमन-सुमन में,
मञ्जु मनोहर लता-भवन में,

खेल रही हैं बनी तितलियाँ,
मेरे उर की कोमल कलियाँ !

शशि की किरणों में घुल-मिलकर,
लहराती लहरों में खिलकर,
मृदु समीर से कुछ हिल-हिलकर,

रस-सागर की बनी मछलियाँ,
मेरे उर की कोमल कलियाँ !

सन्ध्या के चुम्बन से विकसित,
द्युति के सुखस्पर्श से पुलकित,
एक - दूसरे से आकर्षित,

हैं अम्बर की तारावलियाँ,
मेरे उर की कोमल कलियाँ !

देख-देख जग की दुख-पीड़ा,
पाशवता की निष्ठुर क्रीड़ा,
हुई उन्हें भी मन में व्रीड़ा,

भूल गई हैं रंगस्थलियाँ,
मेरे उर की कोमल कलियाँ !

६

है यह जीवन का उपहास !

उत्पल आया हाथ उसी क्षण,
मुझे उपल भी प्राप्त हुआ;
जब देखा आरम्भ सुखों का,
जीवन तभी समाप्त हुआ;

बोल उठा सहसा आकाश,
है यह जीवन का उपहास !

जग ने कोमलता दिखलाई,
तब मैं ही पाषाण हुआ;
आया निकट ध्येय जब मेरा,
मैं थककर म्रियमाण हुआ;

क्या होगा सब व्यर्थ प्रयास ?
है यह जीवन का उपहास !

मुझे शिशिर से भी अति दुखकर,
यह जग का मधुमास हुआ;
आया समय देखने का जब,
धुँधला नयन-प्रकाश हुआ;

क्यों न रहे फिर चित्त उदास ?
है यह जीवन का उपहास !

ज्यों ज्यों आशा हुई बलवती,
त्यों-त्यों कम विश्वास हुआ;
अवनी से हट गई दृष्टि है,
और निकट आकाश हुआ;

मुक्ति ज्ञात होती है पास,
है यह जीवन का उपहास !

१०

यह कोमल लघु फूल !

कितनी बार खिला-मुरझाया,
मधुपों को मकरन्द चखाया,

किन्तु पा सका है जीवन में,

केवल उर का शूल,
यह कोमल लघु फूल !

कितनी बार गिरा भूतल पर,
कितनी चोट सही मृदु दल पर,
किन्तु विटप पर फिर हँसता है,
सभी दुखों को भूल,
यह कोमल लघु फूल!

रस-समूह सञ्चित कर उर में,
छिपा विपिन के अन्तःपुर में,
देता है सौरभ समीर को,
ले बदले में धूल,
यह कोमल लघु फूल!

११

तुम सुखी रहो, मैं दुखी रहूँ !

तुम हँसो तडित् बन अम्बर में,
मैं रोऊँ वारिद के स्वर में,
मृदु वीचि बनो तुम सागर में,

मैं तृण-सा व्याकुल साथ बहूँ;
तुम सुखी रहो, मैं दुखी रहूँ !

तुम खिलो कली बनकर वन में,
मैं फिरूँ भ्रमर-सा आँगन में,
तुम भरो सुरभि निज मृदु तन में,

मैं तुमसे अपनी व्यथा कहूँ;
तुम सुखी रहो, मैं दुखी रहूँ !

तुम बन वसन्त की श्री सुन्दर,
भर दो जग में सुषमा-सागर,
मैं सुमन बनूँ, तरु-शाखा पर,

निज शूलों के आघात सहूँ;
तुम सुखी रहो, मैं दुखी रहूँ !

१२

मेरे प्रिय को प्रिय है आली !
        यह मेरा विषादमय जीवन !

स्मृति-पट पर अङ्कित होते हैं
        सरल भावमय सजल विलोचन;

बँध जाता है एक राग में
        उनका गायन मेरा रोदन;

है बन गया प्रेम का बन्धन,
यह मेरा विषादमय जीवन !

नयन-नीर से सींच-सींचकर,
मैंने इसे प्रेम से पाला;
मैंने इसको जीवित रक्खा,
पी-पीकर नित विष का प्याला;
सखि ! न भूल, है चिर-सञ्चित धन,
यह मेरा विषादमय जीवन !

मेरी व्यथा समझती हैं कुछ
वन की वल्लरियाँ मुरझाईं;
मेरी कथा जानती हैं कुछ
कुसुमों की कलियाँ कुम्हलाईं;
क्यों जग देख हुआ है उन्मन,
यह मेरा विषादमय जीवन !

१ ३

मुझको कुछ भी हुआ न ज्ञान !

मृदु खग-पोत नीड में डोले,
पादप पर पक्षी कुछ बोले,
विस्मित सुमन रहे मुँह खोले,

आई और गई क्षण भर में
मेरे जीवन की मुसकान;
मुझको कुछ भी हुआ न ज्ञान !

देख उषा की मञ्जुल लाली,
मैंने फिर से जागृति पा ली,
पर देखा तो उर था खाली,

हाय, न जाने कहाँ उड़ गया
मेरे स्वप्नों का नभ-यान ?
मुझको कुछ भी हुआ न ज्ञान !

मैंने शशि से प्रेम लगाया,
सुरपुर में प्रासाद बनाया,
तारों का मणि-हार सजाया,

पर अपनी दुर्बलताओं का
कभी न आया मन में ध्यान;
मुझको कुछ भी हुआ न ज्ञान !

मैंने जीवन व्यर्थ बिताया,
जो जी में आया वह गाया,
जग में यह भी जान न पाया,

कब उठ लीन हुई उरतल में
प्रेम-सिन्धु की लहर अजान;
मुझको कुछ भी हुआ न ज्ञान !

१४

तुम कोमलता के आकर हो!

तनिक ताप से कुम्हलाते हो,
छूने से भी मुरझाते हो,

पर यह कौन नहीं मानेगा,

तुम प्रसून! अतिशय सुन्दर हो;
तुम कोमलता के आकर हो!

तुम्हें जगत् क्या है दे पाया,
तुमने निज मधु-कोष लुटाया,

केवल सुन्दर ही न बहुत हो,

उदारता के भी तुम घर हो;
तुम कोमलता के आकर हो !

कोई तुम्हें तोड़ ले जाये,
मिट्टी में ही तुम्हें मिलाये,

पर प्रसून ! रस-सौरभ देकर,

जग में तुम हो गये अमर हो;
तुम कोमलता के आकर हो !

१५

क्यों कहते हो मुझे अकिञ्चन ?

क्या मेरे भी हृदय नहीं है ?
क्या मुझमें भी विनय नहीं है ?

आशा-अभिलाषा-तृष्णा से

क्या न बना मेरा भी जीवन ?
क्यों कहते हो मुझे अकिञ्चन ?

स्वाभिमान से हीन नहीं हूँ,
प्रेम-दया में दीन नहीं हूँ,

क्या मेरे भी पास नहीं है
भाव-अभाव-भावना का धन ?
क्यों कहते हो मुझे अकिञ्चन ?

मुझको भी पीड़ा है होती,
मेरी भी ममता है रोती,

मुझको भी है मिला विश्व में
समवेदनाशील कोमल मन;
क्यों कहते हो मुझे अकिञ्चन ?

१६

प्रिय है मुझको निज अपनापन !

प्रिय हैं मुझको निज चिन्तायें,
प्रिय हैं परिमित अभिलाषायें,
प्रिय हैं अपनी दुर्बलतायें,

प्रिय है अपना दुखमय जीवन;
प्रिय है मुझको निज अपनापन !

मैं न चाहता हूँ मणि-कञ्चन,
भव्य भवन अथवा उच्चासन,
अथवा जग में निज विज्ञापन,

रहे पास यह स्वप्नों का धन;
प्रिय है मुझको निज अपनापन!

फूल बनूँ तो खिलूँ शूल में,
रत्न बनूँ तो रहूँ धूल में,
छिपूँ कहीं तो प्रिय-दुकूल में,

प्रिय है मुझे विश्व का बन्धन;
प्रिय है मुझको निज अपनापन!

मेरी ओर न देखें तारे,
दूर रहें पशु-पक्षी सारे,
कोकिल रहें मौन ही धारे,

प्रिय है मुझको यह सूनापन;
प्रिय है मुझको निज अपनापन!

१७

देख रहे हैं किसको तारे ?

चन्द्र-लोक के आदि तपस्वी,
आदि यशस्वी आदि मनस्वी,

रजनी में ही खिलनेवाले,

नभ-तरु के प्रसून द्युतिधारे;
देख रहे हैं किसको तारे ?

शिशु-समान हैं भोले-भाले,
हँसमुख हरदम रहनेवाले,

एक रूप हैं एक रंग हैं,

होकर भी ये न्यारे-न्यारे;
देख रहे हैं किसको तारे ?

हँसते ही हँसते हैं रोते,
दृग-जल से जग को हैं धोते,

चमक रहे हैं अन्तरिक्ष में,

प्रभा-पोत से प्यारे प्यारे;
देख रहे हैं किसको तारे ?

जग-जीवन के प्रथम निरीक्षक,
मानवता के प्रथम परीक्षक,

स्वर्ग-सदन के रत्न मनोहर,

सोम-सहोदर व्योम-दुलारे;
देख रहे हैं किसको तारे ?

१८

खिल आई है तू शेफाली !

रही दिवस में तू मुरझाई,
क्या कोई विपत्ति थी आई ?
या प्रकाश से थी शरमाई ?

किन्तु देख सन्ध्या की लाली,
खिल आई है तू शेफाली !

रास-रंग की धूम मचाने,
मधुर-मधुर वर-वेणु बजाने,
विजन विपिन में रस बरसाने,

आये हैं व्रज-धन वनमाली;
खिल आई है तू शेफाली !

देख विश्व-मोहन का नर्तन,
व्रज-वनिता का प्रेमाराधन,
सुनकर मुरली का मृदु गायन,

होकर स्वयं मोद-मतवाली,
खिल आई है तू शेफाली !

१६

क्यों इतना उन्मन है तू मन ?

विश्व सुखी है, विश्व दुखी है,
यह जग-जीवन उभयमुखी है,

कितना त्याग-विराग-भावमय

है जग में अभावमय जीवन ?
क्यों इतना उन्मन है तू मन ?

मत डर जग की विपदाओं से,
जीवन की चिर चिन्ताओं से,

मत अपने को समझ अकिञ्चन

पाकर भी मानवता का धन;
क्यों इतना उन्मन है तू मन ?

सुख हँसता है दुख रोता है,
जो है धनी वही खोता है,

यह तो खेल चलेगा हरदम,

मत तू कभी भूल अपनापन;
क्यों इतना उन्मन है तू मन ?

२०

मुझे अकेला ही रहने दो !

रहने दो मुझको निर्जन में,
काँटों को चुभने दो तन में,
मैं न चाहता सुख जीवन में,

करो न चिन्ता मेरी मन में,

घोर यातना ही सहने दो;
मुझे अकेला ही रहने दो !

मैं न चाहता हार बनूँ मैं,
या कि प्रेम-उपहार बनूँ मैं,
या कि शीश-शृङ्गार बनूँ मैं,

मैं हूँ फूल, मुझे जीवन की

सरिता में ही तुम बहने दो;
मुझे अकेला ही रहने दो!

नहीं चाहता हूँ मैं आदर,
हेम तथा रत्नों का आकर,
नहीं चाहता हूँ कोई वर,

मत रोको इस निर्मम जग को,

जो जी में आवे कहने दो;
मुझे अकेला ही रहने दो!

२१

तुझको वृथा अभिमान है !

अलि ने हृदय तुझको दिया,
मुँह मोड़ क्यों तूने लिया,
उसका न कुछ स्वागत किया,

कैसी हठीली बान है ?
तुझको वृथा अभिमान है !

जीवन तुहिन ने खो दिया,
तेरे चरण को धो दिया,
रस-सिन्धु-मध्य डुबो दिया,

सच्चा यही बलिदान है;
तुझको वृथा अभिमान है !

तेरा भरा रस-कोष है,
यह रूप-रङ्ग अदोष है,
तो भी न तुझको तोष है,

कलिके ! बड़ी नादान है;
तुझको वृथा अभिमान है !

२२

है विचित्र वह देश !

हैं न जहाँ कुसुमों की कलियाँ,
रस-सिञ्चित अलि-गुञ्जित गलियाँ,
प्रकृति-नटी की रङ्गस्थलियाँ,

है न जहाँ सुख-लेश,
है विचित्र वह देश !

है न जहाँ कोयल मदमाती,
ऋतुपति का सन्देश सुनाती,
जहाँ नहीं है चित्त चुराती—
प्रकृति मनोहर वेष,
है विचित्र वह देश !

है न जहाँ मञ्जुल हरियाली,
दृग-लुभावनी ललित द्रुमाली,
जहाँ कभी छवि पावसवाली—
करती है न प्रवेश,
है विचित्र वह देश !

जहाँ आग-सी क्षिति है जलती,
अवनी से भी आह निकलती,
मृगतृष्णा सदैव है छलती,
जहाँ सतत है क्लेश,
है विचित्र वह देश !

२३

मैं न किसी का हूँ विद्रोही !

जो देकर अपना तन मन धन,
करता है मानव-हित-साधन,
न्याय-सत्य का प्रेमाराधन,

क्यों मोही उस मानव को भी

कहता है यह जग निर्मोही ?
मैं न किसी का हूँ विद्रोही !

दुख-सागर में मैं बहता हूँ,
सब विपत्तियों को सहता हूँ,
तो भी सदा मुदित रहता हूँ,

जो तूफानों से लड़ता है,

मैं हूँ वह दृढ़ नौकारोही;
मैं न किसी का हूँ विद्रोही !

दुर्बल-हृदय देहधारी हूँ,
क्षुद्र जीव मैं संसारी हूँ,
तो भी जग का उपकारी हूँ,

काँटों पर चलनेवाला हूँ,

प्रेम-पंथ का एक बटोही;
मैं न किसी का हूँ विद्रोही !

हूँ न चन्द्र पर तम हरता हूँ,
भूतल को शीतल करता हूँ,
शान्ति-सुधा-घट को भरता हूँ,

जो जीवन में रस लाता है,

हूँ वह कोमल स्वर अवरोही;
मैं न किसी का हूँ विद्रोही !

२४

मधु में खिले तो क्या खिले ?

तप-ताप से तापित भ्रमर—
जब घूमते थे क्षीण-स्वर,
जब थे विकल पशु विहग नर,

तब तुम प्रसून ! नहीं मिले;
मधु में खिले तो क्या खिले ?

जब घोर पावस काल था,
घन गरजता विकराल था,
जीवन बना जंजाल था,

आये न तब सुख-शान्ति ले;
मधु में खिले तो क्या खिले ?

पीड़ित शिशिर की बात से,
विकराल ठंडी रात से,
था विश्व जब हिम-पात से,

तब तुम न पादप में हिले;
मधु में खिले तो क्या खिले ?

२५

क्यों मैं भला करूँ अभिमान ?

नभ के आभूषण तारागण—
करुणामय के हैं करुणा-कण;

करते हैं शीतल भूतल को,

करके नित्य नयन-जल-दान;
क्यों मैं भला करूँ अभिमान ?

जो पथिकों को छाया देकर,
श्रान्ति क्लान्ति हरते हैं सत्वर;

जो फल-फूल सदा देते हैं,

उन तरुओं के कौन समान ?
क्यों मैं भला करूँ अभिमान ?

सौरभ जग को सुरभित करता,
पवन उसे है प्रमुदित करता,

मिटते हैं जलधर जल देकर;

मैं क्या करता हूँ बलिदान ?
क्यों मैं भला करूँ अभिमान ?

यदि मैं कुत्सित क्रूर नहीं हूँ,
तो भी उससे दूर नहीं हूँ,

मैं भी एक विश्व का दुर्बल

प्राणी हूँ, मुझको है ज्ञान;
क्यों मैं भला करूँ अभिमान ?

२६

कुछ भी मेरा दोष नहीं !

मैंने सच्चा प्यार किया,
सुख से निज सर्वस्व दिया,

पर मेरे इस आत्मत्याग से

जग को है सन्तोष नहीं;
कुछ भी मेरा दोष नहीं !

जग सुनकर मेरा कर्कश स्वर,
रोष वृथा करता है मुझ पर,

कैसे गाऊँ मधुर गीत मैं,

उर में है रस-कोष नहीं;
कुछ भी मेरा दोष नहीं !

रखता हूँ मैं उर में ज्वाला,
पीता हूँ पीड़ा की हाला,

जग मन में चाहे जो समझे,

मुझे किसी पर रोष नहीं;
कुछ भी मेरा दोष नहीं !

२७

ऐ मधुवन के फूल !

तजकर गोद लता की कोमल,
रुचिर सुनहले नवपल्लव-दल,
मलयानिल का चञ्चल अञ्चल,

वन-विहार, संसार प्रेममय

कहाँ गये हो भूल ?
ऐ मधुवन के फूल !

भूल गये हो मृदु मुसकाना,
चपल तितलियों का इतराना,
मत्त मधुकरों का मँडराना,

किन्तु कभी क्या भूल सकोगे

रस-सरिता के कूल ?
ऐ मधुवन के फूल !

आये थे तुम दानी बनकर,
किन्तु गये हो मानी बनकर,
जग की एक कहानी बनकर,

तुमने निज सर्वस्व मिटाकर,

कर दी मधुमय धूल
ऐ मधुवन के फूल !

२८

क्यों तू मानव ! रोता है ?

देख पतन मृदु मञ्जु सुमन का,
अन्त हुआ जिसके जीवन का,

व्यर्थ धैर्य तू खोता है;
क्यों तू मानव ! रोता है ?

क्यों तुझको उससे ममता है,
जिसमें इतनी अस्थिरता है,

सुख चञ्चल जल-सोता है;
क्यों तू मानव ! रोता है ?

निष्फल इच्छाओं का बन्धन—
टूट जाय, हो हलका जीवन,

यही अन्त में होता है;
क्यों तू मानव ! रोता है ?

२६

शान्ति रहे पर क्रान्ति रहे !

फूल हँसें खेलें नित फूलें,
पवन-दोल पर सुख से झूलें,
किन्तु शूल को कभी न भूलें,

स्थिरता आती है जीवन में,

यदि कुछ नहीं अशान्ति रहे;
शान्ति रहे पर क्रान्ति रहे !

यदि निदाघ क्षिति को न तपावे,
तो फिर क्या घन जल बरसावे ?
कैसे जीवन जग में आवे ?

यदि न बदलती रहे जगत में,

तो किसको प्रिय क्रान्ति रहे ?
शान्ति रहे पर क्रान्ति रहे !

उन्नति हो अथवा अवनति हो,
यदि निश्चित मनुष्य की गति हो,
तो फिर किसे कर्म में रति हो ?

रहे अटल विश्वास चित्त में,

किन्तु तनिक-सी भ्रान्ति रहे;
शान्ति रहे पर क्रान्ति रहे ?

३०

कैसे जीवन सफल करूँ ?

किसका मैं उपहास करूँ,
किस पर मैं विश्वास करूँ,

मैं निज स्वप्नों की अमूल्य निधि

जाकर किसके पास धरूँ ?
कैसे जीवन सफल करूँ ?

सबसे बड़ी विघ्न-बाधायें,
हैं निज मन की दुर्बलतायें,

जग की निर्मम इच्छाओं से

लड़कर कितनी बार मरूँ ?
कैसे जीवन सफल करूँ ?

जिसमें बस मौखिक ममता है,
उसमें क्या भौतिक क्षमता है,

अपने क्षार नयन-जल से मैं

किसका हृदय-पयोधि भरूँ ?
कैसे जीवन सफल करूँ ?

२१

खिलो सुमन ! आया मधुमास !

कोकिल अग्र-दूत बन आया,
वसुधा में रस है बरसाया,
मलयानिल सौरभ है लाया,

रहा नहीं हिम-त्रास कहीं है,

अब है कोई नहीं उदास;
खिलो सुमन ! आया मधुमास !

कब तक रहते सुख के दिन हैं ?
कब तक रहते हरे विपिन हैं ?
कब तक गाते मधुप मलिन हैं ?

जब तक ग्रीष्म नहीं आता है,

कर लो जी भर हास-विलास;
खिलो सुमन ! आया मधुमास !

मृदु पल्लव की सेज बिछाकर,
सींच-सींचकर रस से निज घर,
सुरभित हाला से प्याला भर,

जीवन का आनन्द मना लो,

कर लो कुछ दिन जग में वास;
खिलो सुमन ! आया मधुमास !

३२

कुछ तो कोकिल ! कहो कहो !

टूट गई हैं दुख की कड़ियाँ,
आई हैं फिर सुख की घड़ियाँ,

उचित नहीं है, इस मधुऋतु में

तुम्हीं अकेले दुःख सहो;
कुछ तो कोकिल ! कहो कहो !

हँसती हैं कुसुमों की कलियाँ,
थिरक रही हैं मञ्जु तितलियाँ,

संसृति के इस सुख-सागर में

तुम भी सुख से बहो बहो;
कुछ तो कोकिल ! कहो कहो !

यदि है व्यथा तुम्हारे मन में,
निरा दुःख ही है जीवन में,

तो गाओ कुछ करुण गीत ही,

पर अब तुम मत मौन रहो;
कुछ तो कोकिल ! कहो कहो !

३३

मेरे जीवन का उद्यान !

आया कई बार मधुमास,
विपिन-विपिन में हुआ विकास,
तरु-तरु में छाया उल्लास,

पर रह गया सदा ही म्लान,
मेरे जीवन का उद्यान !

अपनी चिन्ताओं में लीन,
सब प्रकार आनन्द-विहीन,
रहा सर्वदा दीन-मलीन,

सुन न सका कोकिल का गान,
मेरे जीवन का उद्यान!

तरु की शाखाओं पर झूल,
हैं झड़ गये स्वयं सब फूल,
शेष रह गये हैं बस शूल,

पा न सका फिर से वरदान,
मेरे जीवन का उद्यान!

३४

गर्व वृथा तुम करते हो !

नभ में करते हो तुम वास,
है तुमसे भूषित आकाश,
सूर्य-चन्द्र हैं रहते पास,

पर क्या जग-दुख हरते हो ?
गर्व वृथा तुम करते हो !

हो तुम तारे ! ज्योतिष्मान,
हो चित्रित-से रूप-निधान,
पर क्या तुमको है कुछ ज्ञान ?

तम में सदा विचरते हो;
गर्व वृथा तुम करते हो !

जब जग दुख से पाकर त्रास,
होता है उद्विग्न उदास,
खोता है आत्मिक विश्वास,

तब न आह भी भरते हो;
गर्व वृथा तुम करते हो !

३५

तुम घृणा करो मैं प्यार करूँ !

तुम बहो सदा सुख-सागर में,
मैं वास करूँ दुख के घर में,

तुम क्रान्ति मचा दो जीवन में,

मैं जीवन में सुख-शान्ति भरूँ;
तुम घृणा करो मैं प्यार करूँ !

तुम बनो विभवशाली जग में,
मैं ठोकर खाऊँ पग-पग में,

तुम जीवन के अभिशाप बनो,

मैं जीवन के सन्ताप हरूँ;
तुम घृणा करो मैं प्यार करूँ!

प्रिय हो तुमको वैभव अपना,
प्रिय हो मुझको अपना सपना,

तुम सुख-समृद्धि की छाँह धरो,

मैं दीन-दुखी की बाँह धरूँ;
तुम घृणा करो मैं प्यार करूँ!

२६

सुख की घड़ियाँ, दुख की घड़ियाँ !

जग के स्नेह-सलिल से सिञ्चित,
जीवन के प्रकाश से विकसित,
युग-युग की विभूतियाँ संचित,

पुलकित सस्मित और कण्टकित

मृदु प्रसून की हैं पंखड़ियाँ;
सुख की घड़ियाँ, दुख की घड़ियाँ !

आती-जाती रहती प्रतिपल,
रति में अविचल गति में चंचल,
हैं कोमल शतदल-सी शतदल,

जीवन-जलधि-तरङ्गावलियाँ,

मौन अश्रुमाला की लड़ियाँ;
सुख की घड़ियाँ, दुख की घड़ियाँ !

परिचित भी हैं और अपरिचित,
परिमित भी हैं तथा अपरिमित,
भिन्न-भिन्न भी हैं अभिन्न नित,

प्रेम-भाव से मिलीं परस्पर

विश्व-शृङ्खला की हैं कड़ियाँ;
सुख की घड़ियाँ, दुख की घड़ियाँ !

२७

मैं हूँ फूल विश्व-छवि-मूल !

चाहे मुझ पर फेंक उपल दो,
अथवा हाथों से ही मल दो,
या पैरों से मुझे कुचल दो,

पर तुम मानव ! अन्ध-स्वार्थवश
इसे कभी मत जाना भूल;
मैं हूँ फूल विश्व-छवि-मूल !

भौंरा आकर मुझे चिढ़ाता,
तीव्र वायु है धूल उड़ाता,
भीष्म ग्रीष्म है मुझे जलाता,

पर मैं मन में रोष न लाकर,

रहता हूँ सबके अनुकूल;
मैं हूँ फूल विश्व-छवि-मूल !

जो नर मुझे तोड़ ले जाता,
लता-अंक से दूर हटाता,
मेरा सुख-सर्वस्व मिटाता,

मैं उसको भी सौरभ देकर,

रखता हूँ निज उर में शूल;
मैं हूँ फूल विश्व-छवि-मूल !

३८

क्यों न भला मैं प्यार करूँ ?

जो न किसी से कुछ लेते हैं,
सौरभ-निधि सबको देते हैं,

किस प्रकार उन मृदु सुमनों से
मैं निर्दय व्यवहार करूँ ?
क्यों न भला मैं प्यार करूँ ?

भोली-भाली चितवनवाले,
गये प्रेम से जो हैं पाले,

उन मृग-शिशुओं को गोदी में

लेकर क्यों न दुलार करूँ ?
क्यों न भला मैं प्यार करूँ ?

दीन-हीन ही रहनेवाले,
भूख-प्यास दुख सहनेवाले,

उन बेचारे लघु विहँगों पर

कैसे निठुर प्रहार करूँ ?
क्यों न भला मैं प्यार करूँ ?

जिनके मृदु पल्लव की छाया,
कर देती है शीतल काया,

उन उपकारी महीरुहों का

क्यों न सदा सत्कार करूँ ?
क्यों न भला मैं प्यार करूँ ?

३६

सजनी ! यह है रजनी-बाला !

जिसकी पग-ध्वनि से आकर्षित,
जिसके कोमल कर से स्पर्शित,
खिलते प्रसून हैं हो हर्षित,

करती है जो अभिसार नित्य
पहने तारों की मणिमाला;
सजनी ! यह है रजनी-बाला !

मञ्जुल मयङ्क-आननवाली,
ज्योत्स्ना से ज्योतित तनवाली,
करुणा-सी कोमल मनवाली,

रहती है हरदम मतवाली

पी-पी कर जो हिम की हाला;
सजनी ! यह है रजनी-बाला !

प्रिय का दर्शन जब पाती है,
आनन्दित हो खिल जाती है,
कोयल मृदु स्वर में गाती है,

बह जाती है रस की धारा,

बन जाती है यह मधुशाला;
सजनी ! यह है रजनी-बाला !

मुझ-सी वियोगिनी जब होती,
तब यह भी है धीरज खोती,
दृग-जल से है आनन धोती,

जलकर सन्ध्या की ज्वाला से

होता है इसका तन काला;
सजनी ! यह है रजनी-बाला !

४०

मेरी मदिरा की प्याली !

रस - पीयूष पिलानेवाली,
उर की प्यास बुझानेवाली,

है कैसी भोली-भाली
मेरी मदिरा की प्याली !

शशि की किरणों से आमज्जित,
तारक-रत्नों से आभूषित,

रजनी ने भर दी आली !
मेरी मदिरा की प्याली !

एक साध है मेरे मन में,
यही लालसा है जीवन में,

पी लो तुम मरीचिमाली !
मेरी मदिरा की प्याली !

४१

हो तुम सुन्दर हरशृङ्गार !

रूप-रंग का ले अमूल्य धन,
आये हो ले भोली चितवन,
कौन कहेगा तुम्हें अकिञ्चन ?

मेरे प्रियतम के उपहार;
हो तुम सुन्दर हरशृङ्गार !

कोमलता ने तुमको पाला,
सौरभ ने दी सुख की हाला,
दी कुसुमाकर ने छवि-माला,

किया प्रकृति ने है शृङ्गार;
हो तुम सुन्दर हरशृङ्गार !

देख तुम्हारी छवि मतवाली,
खिल उठती है डाली डाली,
तुम्हें चाहते हैं वनमाली,

क्यों न करूँ मैं तुमसे प्यार ?
हो तुम सुन्दर हरशृङ्गार !

४२

मेरे जीवन की सीमायें !

कभी न आगे जाने देतीं,
कभी न शीश उठाने देतीं,
कभी न हँसने-गाने देतीं,

पद-पद पर सम्मुख आती हैं
भाँति-भाँति की बन बाधायें;
मेरे जीवन की सीमायें !

कभी न चिन्ता खोने देतीं,
कभी न सुख से सोने देतीं,
कभी न जी भर रोने देतीं,

विविध रूप में बन जाती हैं

मेरे मन की ही इच्छायें;
मेरे जीवन की सीमायें!

भीति हृदय में हैं उपजाती,
वारि दृगों से हैं बरसाती,
मन-मयूर को नित्य नचाती,

गरज रही हैं, तरज रही हैं,

बन कर घन की सघन घटायें;
मेरे जीवन की सीमायें!

४३

है वह जीवन ही बस जीवन !

दीन-दुखी का दुःख-निकन्दन,
पतित प्राणियों का अवलम्बन,
न्याय-सत्य का सतत समर्थन,

है जिससे मानव-हित-साधन,
है वह जीवन ही बस जीवन !

जो है त्याग-सुगन्ध-सुगन्धित,
है अनुराग-राग से रञ्जित,
जो है करुणा-जल से सिञ्चित,

जो है गंगा-जल-सा पावन,
है वह जीवन ही बस जीवन !

है जिसमें न तनिक भी लाघव,
जग की पशुता से न पराभव,
है जिसका समस्त भव बांधव,

है जिसका मानवता ही धन,
है वह जीवन ही बस जीवन !

जग के दुख से है जिसको दुख,
उसके सुख में है जिसको सुख,
स्वार्थ नहीं है जिसके सम्मुख,

है जगमय जिसका अपनापन,
है वह जीवन ही बस जीवन !

४४

मैंने पाया यह वरदान !

खोकर उर की सब इच्छायें,
(मधुवन की कोमल कलिकायें)
कर खण्डित मन की प्रतिमायें,

करके जीवन का बलिदान,
मैंने पाया यह वरदान !

भूल हृदय की दुर्बलतायें,
जीत विश्व की सब विपदायें,
करके चूर कठिन बाधायें,

कर आजीवन दुख का गान,
मैंने पाया यह वरदान !

जग को दृग-जल से नहलाया,
उर-प्रसून का हार बनाया,
किन्तु अमृत-फल हाथ न आया,

जग को भूलों को पहचान,
मैंने पाया यह वरदान !

४५

कहाँ गई वह मृदु मुसकान ?

प्रेम सदा दिखलानेवाली,
थी वह कितनी भोली-भाली,
थी जीवन की ज्योति निराली,

क्या चुपचाप चुराकर उसको

सुमन बन गये हैं छविमान ?
कहाँ गई वह मृदु मुसकान ?

मृदुल हृदय-लतिका में फूली,
पल्लव-अधर-दोल पर झूली,
दिखती थी कुछ भूली-भूली,

क्या वह जलद-जाल में जाकर

छिपी चारु चञ्चला समान ?
कहाँ गई वह मृदु मुसकान ?

सुधा-सिन्धु की लहर मनोहर,
थी वह हृदय-विभा का आकर,
मानवता का दर्पण सुन्दर,

क्या ले ज्योति उसी की नभ में

तारागण हैं ज्योतिष्मान ?
कहाँ गई वह मृदु मुसकान ?

४६

तू मुझमें है लीन निरन्तर !

है सरिता सागर में अन्तर,
है चपला जलधर में अन्तर,
है अवनी अम्बर में अन्तर,

यदि यह सच है हे उरवासिनि !

तो तुझमें मुझमें है अन्तर;
तू मुझमें है लीन निरन्तर !

छिपी अलिनि ! तू है शतदल में,
छिपी सुरभि बन तू परिमल में,
छिपी मीन-सी गङ्गा-जल में,

दो हृदयों को एक बनाया

तूने उर में बन्दी बनकर;
तू मुझमें है लीन निरन्तर !

हृदय-कुञ्ज की कलिका सुन्दर,
मानस की हंसिनी मनोहर,
तू ही भीतर तू ही बाहर,

दो प्राणों में जो अन्तर था

दूर किया तूने रस भर-भर;
तू मुझमें है लीन निरन्तर !

४७

मेरे जीवन की मधुर साध !

सिञ्चित विलोचनों के जल से,
सुरभित उर-शतदल-परिमल से,
जीवित केवल आशा-बल से,

अपराध बनी है निरपराध;
मेरे जीवन की मधुर साध !

मन के विश्वासों से पालित,
उर के उच्छ्वासों से लालित,
शुभ अभिलाषों से संचालित,

है प्रेम-सिन्धु-लहरी अगाध;
मेरे जीवन की मधुर साध !

कुछ लीन हुई हृदयस्थल में,
कुछ डूब गई दृग के जल में,
कुछ फैल गई जगती-तल में,

रह गई शेष है एक-आध;
मेरे जीवन की मधुर साध !

४८

मैंने सीखा दुखमय गायन !

किरणों की माला में गुँथकर,
पिक के स्वर में भर पञ्चम स्वर,
रत्नाकर को दे रत्नाकर,

देकर जग को निज तन-मन-धन,
मैंने सीखा दुखमय गायन !

सागर की लहरों में बहकर,
हिम-शैलों की चोटें सहकर,
उन्नति-अवनति में सम रहकर,

दृग-नभ का बनकर जलमय घन,
मैंने सीखा दुखमय गायन !

कोमल कलियों का कुम्हलाना,
लघु लतिकाओं का मुरझाना,
देख ज्योतियों का छिप जाना,

आँसू से कर सिञ्चित जीवन,
मैंने सीखा दुखमय गायन !

सुमनों में रखकर निज जीवन,
सौरभ से सजकर अपना तन,
मृदु छवि से रँगकर अपना मन,

निःश्वासों का मन्द पवन बन,
मैंने सीखा दुखमय गायन !

४६

फूल बनूँ मैं फूल बनूँ !

विकसित होकर मैं पादप में,
पल्लव का अनुराग बनूँ ;
होकर गुञ्जित भ्रमरावलि से,
मैं वसन्त का राग बनूँ ;
रस-सौरभ देकर वसुधा को,
मैं त्यागी का त्याग बनूँ ;
व्यथा मधुर होती है जिससे,

मैं उर का वह शूल बनूँ ;
फूल बनूँ मैं फूल बनूँ !

लता-गोद का मोद बनूँ मैं,
तरुओं का अभिमान बनूँ;
मादकता का रूप बनूँ मैं,
जीवन की पहचान बनूँ;
ज्ञान बनूँ मैं आदि-अन्त का,
मैं अनन्त का गान बनूँ;
जिसमें छिपी कथा है जग की,

जीवन की वह भूल बनूँ;
फूल बनूँ मैं फूल बनूँ !

चित्र बनूँ मैं भाव-स्रोत का,
सुख का वासस्थान बनूँ;
जग की सुन्दरता का प्रतिनिधि,
कानन की मुसकान बनूँ;
करुणा का आख्यान बनूँ मैं,
कोमलता की खान बनूँ;
जो पवित्र करती है जग को,

प्रिय-पद की वह धूल बनूँ;
फूल बनूँ मैं फूल बनूँ !

५०

मैं तुम्हें पाऊँ कहाँ ?

हो बसे तुम व्योम में,
हो छिपे तम-तोम में,
पर प्रकट हो सोम में,

मैं पहुँच पाता नहीं तुम—

हो सदा रहते जहाँ;
मैं तुम्हें पाऊँ कहाँ ?

सन सुगन्धित धूल में,
हो खिले तुम फूल में,
फँस गये हो शूल में,

मैं नहीं रहता जहाँ तुम—

वास हो करते वहाँ;
मैं तुम्हें पाऊँ कहाँ ?

प्रेम के दृग-नीर में,
वेदना के चीर में,
उर-उदधि के तीर में,

हो छिपे रहते सदा तुम—

क्यों भला आओ यहाँ ?
मैं तुम्हें पाऊँ कहाँ ?

५१

जीता हूँ आशा-बल से !

जीवन में विश्वास लिये,
आँखों में अभिलाष लिये,
प्राणों में चिर-प्यास लिये,

सींच-सींचकर मैं अपने को
तेरे ही लोचन-जल से;
जीता हूँ आशा-बल से !

प्रेम-सुधा का पान किये,
भाव-रत्न की खान लिये,
तुझमें सन्तत ध्यान दिये,

कर अपने को सुरभित तेरे

पाद-पद्म के परिमल से;
जीता हूँ आशा-बल से !

निज उर का अज्ञान लिये,
दुख का ही वरदान लिये,
आत्मा का अभिमान लिये,

तुझे मिलाता हूँ सदैव मैं

निज जीवन के पल-पल से;
जीता हूँ आशा-बल से !

५२

रह गया हूँ मैं अकेला !

है छिपाया चाँदनी में
चन्द्रमा ने हास मेरा,
लिख लिया स्वर्णाक्षरों में
व्योम ने इतिहास मेरा,
ले लिया खद्योत ने
मेरे दृगों का भी उजेला;
रह गया हूँ मैं अकेला !

किस लता में हैं खिले
लेकर सुमन अरमान मेरे ?
हैं छिपे किस कुञ्ज में
परभृत चुराकर गान मेरे ?

ले गई है यामिनी

द्रुत-गामिनी मधु मधुर वेला;
रह गया हूँ मैं अकेला !

बन गये शृङ्गार गिरि के
अश्रु-मुक्ता-माल मेरे,
उड़ गये हैं त्याग मानस
मृदु मनोज्ञ मराल मेरे,

ले गया है काल—

मेरे सुख-दुखों का भी झमेला;
रह गया हूँ मैं अकेला !